प्राच्यवाद की अवधारणा

(Concept of Orientalism)

प्राच्यवाद अंग्रेजी शब्द ऑरिन्टेलिज़्म 'Orientalism' का हिन्दी रूपान्तरित शब्द है। अंग्रेजी का शब्द 'ओरियन्ट' Orient उस पूर्वी संसार का द्योतक है जिस पर पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने अपने उपनिवेश के रूप में अधिपत्य स्थापित किया था। इस शब्द का विकास 'ऑक्सीडेंट' Occident शब्द के विलोम शब्द के रूप में हुआ जिसका तात्पर्य तथाकथित प्रगतिगामी पश्चिमी विश्व से है। इस शब्द के अवधारणात्मक स्वरूप में ऑक्सीडेंट (पश्चिम) अपने विपरीत ध्रुव के रूप मे ओरियन्ट (पूर्व) के रचना संसार को एक भ्रांत, दुराग्राही एवं मानमाने ढंग से व्यक्त करता है।

ऐतिहासिक धरातल पर एक विचारधारा के रूप में प्राच्यवाद के अंतर्गत पश्चिम द्वारा 18वीं एवं 19वीं सदी के दौरान स्वयं को केन्द्र में रखकर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए पूर्वी संस्कृतियों की स्थावर संरचना बनायी गयी। **एडवर्ड सईद** के अनुसार, प्राच्यविदों द्वारा ज्ञान की अत्यन्त परिष्कृत राजनीति के अंतर्गत पश्चिम केन्द्रित पूर्वाग्रहों का प्रयोग करके एशिया एवं मध्य पूर्व की भ्रांत एवं रोमानी छवियों को गढ़ा गया जिससे कि पश्चिमी की औपनिवेशिक एवं साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाओ को तर्क प्रदान किया जा सके। इस प्रकार प्राच्यवाद उत्तर-औपनिवेशिक सिद्धान्त के आधारभूत प्रतिपादक सिद्धान्तों में से एक है।

आरम्भिक दौर में प्राच्यवाद पद का प्रयोग पश्चिमी दुनिया के लेखकों, कलाकारों एवं रचनाकारो द्वारा पूर्वी देशों की संस्कृतियों का वर्णन और अध्ययन करने के लिए किया गया। 19वीं सदी में अनेक यूरोपीय साहित्यकारों एवं कलाकारों ने उत्तरी अफ्रीका एवं एशिया की यात्रा के अनुभवों एवं कलात्मक प्रभावों को अपनी रचनाओं में जो स्थान दिया उसे प्राच्यवादी लेखन कहा गया। ब्रिटिश अंग्रेज़ **लार्ड बायरन** ने 1812 में 'ओरिएंटल स्टडीज़' शब्द का प्रयोग किया था। कोलम्बिया विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन करते हुए **प्रो० एडवर्ड**

सईद ने जब नस्लवादी प्रभाव वाले रचनाकार **अर्नस्टनेनन** का अध्ययन किया तो उन्होंने इसका प्रयोग एक नस्लवादी प्रभावयुक्त अवधारणा के रूप में किया तथा 1968 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'ओरिएंटलिज्म' में इसे इस नवीन संदर्भ में प्रस्तुत किया। अपने अध्ययन में **प्रो० सईद** ने अरब एवं इस्लामी सभ्यता के संदर्भ में प्राच्यवाद का विश्लेषण करते हुए साम्राज्यवाद से प्राच्यवाद के घनिष्ठ सम्बन्ध एवं उसके राजनीतिक निहितार्थ को रेखांकित किया है। उनके द्वारा प्रवर्तित प्राच्यवाद की यह अवधारणा मानविकी के विभिन्न अनुशासनों यथा-इतिहास लेखन, संस्कृति अध्ययन, साहित्य सिद्धान्त आदि में यूरोकेन्द्रिता का प्रतिरोध रचने एवं पूर्वी सभ्यता एवं विचार की स्वायत्त दावेदारियों के लिए प्रयुक्त होती है।

प्राच्यवाद का मानना है कि यूरोपीय विद्वानों एवं अनुसंधानकर्ताओं द्वारा अफ्रीका, एशिया एवं मध्य-पूर्व का किया गया चित्रण तथ्यों अथवा यथार्थ पर आधारित न होकर कुछ पूर्व-निर्धारित रूढ़ियों पर आधृत है। यूरोपीय कलाकारों का चित्रण सभी पूर्वी समाजों को तर्क-बुद्धि से वंचित, दुर्बल एवं नारीवादी रूप में दर्शाता है, जबकि पश्चिमी संदर्भों को वे बुद्धिसंगत, बलवान् एवं पौरुषपूर्णता के साथ चित्रित करते हैं। यह दुराग्रह न केवल पश्चिमी विद्वत्ता में रच-बस गया है वरन् साम्राज्यवादी प्रभुत्व के अंतर्गत बहुत से पूर्वी विद्वानों ने भी इसे सहज रूप में स्वीकार कर लिया है तथा इस प्रकार अधिकांश पश्चिमी व पूर्वी प्रेक्षक इस दुराग्रह को देख नहीं पाते हैं और 'पूर्व, पूर्व है जबकि पश्चिम, पश्चिम' यह मानकर इस बौद्धिक भेदभाव पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगा देते हैं। इस प्रक्रिया में पश्चिमी सभ्यता की प्रत्येक वस्तु, क्रिया, विचार एवं अवधारणा को वैश्विक एवं वैज्ञानिक मानक के रूप में देखा जाने लगा है जबकि प्राच्य अर्थात् अफ्रीकी एवं पूर्वी वैचारिकता को असंगत, अमौलिक एवं रूढ़िवादी मानकर त्याग दिया जाता है।

शास्त्रीय रूप में प्राच्यवाद की अवधारणा अन्तर्अनुशासनात्मक अनुसंधान का परिणाम है। जिसमें विभिन्न समाजविज्ञानों के साथ ही तुलनात्मक साहित्य की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। **फूको** की सत्ता एवं ज्ञान के अंतर्संबंधों के साथ-साथ **एंटोनियो ग्राम्शी** की वर्चस्व की अवधारणा ने इसके विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय संदर्भ में **निकोलस डिर्क** व **रोनाल्ड इण्डेन** जैसे समाजविज्ञानी एवं **हामिश दुबोशी, गायत्री चक्रवर्ती** एवं **स्पिवाक** जैसे साहित्यकार भी प्राच्यवादी स्थापनाओं से प्रभावित हुए हैं।

प्राच्यवाद के प्रभाव

(Effects of Orientalism)

18वीं एवं 19वीं सदी के दौरान उपनिवेशवादी पश्चिमी देशों ब्रिटेन, फ्रांस, पुर्तगाल एवं जर्मनी ने दुनिया के विभिन्न देशों में अपने उपनिवेश स्थापित किये। इस प्रक्रिया में उपनिवेशवादी इन देशों की ऐसी संस्कृतियों के संपर्क में आये जिनसे वे सर्वथा अनभिज्ञ थे। इन देशों पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए स्थानीय संस्कृति से अनभिज्ञता उपनिवेशवादियों के आर्थिक-राजनीतिक हितों की दृष्टि से हानिकारक हो सकती थी। इसलिए उन्होंने एक ओर इन देशों की संस्कृतियों की जानकारी एकत्रित करनी आरम्भ की तो दूसरी ओर स्थानीय संस्कृतियों की तुलना में अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ सिद्ध करने की अनेक योजनाओं पर काम किया। इस प्रकार, प्राच्यवाद का प्रभाव दो प्रकार से हुआ–

(1) प्राच्यवाद का नकारात्मक प्रभाव–प्राच्यवाद की अवधारणा का नकारात्मक प्रभाव भारत सहित उपनिवेशवाद की अमानवीयता झेल रहे पूर्वी दुनिया के देशों के साहित्य, कला एवं दर्शन के वैश्विक प्रसार पर हुआ। विशेष रूप से इसी कारण स्वतंत्रतापूर्व भारत एवं अंग्रेजों के अधिपत्य के अधिकांश देशों के साहित्यकारों, कलाकारों, विज्ञानियों एवं दर्शनिकों को वैश्विक मान-सम्मान एवं पुरस्कारों से वंचित रखा गया। साथ ही, इस अवधारणा का प्रयोग करके ही उपनिवेशवादियों ने देशज शिक्षा प्रणाली की गरिमा को नष्ट करके अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को लागू

Scanned with CamScanner

करने में किया। स्वतन्त्रतापूर्व इस विचारधारा के प्रभाव से ही भारत में अंग्रेजों के गुणगान करने वाला एक बहुत बड़ा वर्ग बन गया था तो अंग्रेजी एवं अंग्रेजी तौर-तरीकों को भारत के परम्परागत तौर तरीकों से श्रेष्ठ मानने लगा था। इसके प्रभाव से ही भारत में बड़ी संख्या में धर्म परिवर्तन भी हुआ और बहुत से भरतीय अंग्रेजी संस्कृति के उपासक बन गये। इसके दुष्परिणामस्वरूप ही भारत में संस्कृत जैसी प्राचीन भाषाओं का पतन हुआ और अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा को प्रत्येक क्षेत्र में अपनाया जाने लगा। इसके परिणामस्वरूप ही बहुत से भारतीयों ने भ्रमवश यह मानना आरम्भ कर दिया कि भारतीय दर्शन केवल अवैज्ञानिक उपासनाओं का भण्डार है जबकि पश्चिमी साहित्य ही वैज्ञानिक वैचारिकता का द्वार है।

(2) प्राच्यवाद का सकारात्मक प्रभाव–प्राच्यवाद के प्रभाव से उपनिवेशवादियों ने जब स्थानीय संस्कृतियों के सम्बन्ध में खोज प्रारम्भ की तो इससे उपनिवेशिक देशों की संस्कृतियों के एकत्रिकरण एवं अध्ययन का सुव्यवस्थित प्रयास प्रारम्भ हुआ। उदाहरणस्वरूप भारत में प्राच्यवाद के अंतर्गत अध्ययन कलकत्ता की रॉयल एशियाटिक सोसायटी के माध्यम से आरम्भ हुए। इसके अंतर्गत शोधकर्ताओं ने वेद, पुराण, स्मृतियों, उपनिषदों, बौद्ध एवं जैन साहित्य के अध्ययन के साथ ही विभिन्न भारतीय लिपियों, प्राचीन सभ्यताओं जैसे-सिंधु घाटी सभ्यता आदि का अध्ययन आरम्भ किया। विशेषतः इससे भारत में सामाजिक-राजनीतिक इतिहास लेखन को एक नवीन दिशा प्राप्त हुई। इस सम्बन्ध में 1794-1815 के मध्य एशियाटिक सोसायटी के सचिव **एच०ही० कोलब्रुक** का यह कथन महत्त्वपूर्ण है, "मैं ऐसी प्रवृत्तियों का न तो स्वागत करता हूँ और न ही उन्हें प्रोत्साहित करता हूँ जो इतिहास लेखन को केवल भारत पर शक्तिशाली ढंग से राज करने वाले सम्राटों एवं सामंतों तक सीमित कर देती है। विभिन्न कालखण्डों में होने वाले युद्ध एवं उनके प्रभाव को समझने के प्रयास ही पर्याप्त नहीं है। अच्छा यह होगा कि भारत के प्राचीन लेखकों की कृतियों के परिश्रमपूर्ण अध्ययन की दिशा में कुछ विशेष प्रयास किये जायें। इससे भारत के विभिन्न कालखण्डों के क्षेत्र में किए गये प्रयास पर आधारित विभिन्न सिद्धान्तों, दर्शन एवं आचार-विचार को समझने में सफलता मिल सकती है और इसी से भारत के वैचारिक विकास की परम्परा को भी उचित ढंग से समझा जा सकता है।" इसी के परिणामस्वरूप अनेक पाश्चात्य प्राच्य विद्वानों ने प्राचीन भारतीय दर्शन को पढ़ा एवं उस पर अपने-अपने ढंग से टिप्पणियाँ लिखीं, जैसे-**नैथेनियल हालहेड** ने कोड ऑफ जेनटूस लॉ के नाम से 1776 ई० में मनुस्मृति का अनुवाद किया, **चार्ल्स विलकिन्स** ने 1785 ई० में भागवद्गीता का अनुवाद किया एवं **कोलब्रुक** ने 1798 ई० में हिन्दू शास्त्रीय कानूनों पर आधारित एक डाइजेस्ट का प्रकाशन कराया एवं भागतपुराण, शिवपुराण एवं महाभारत के कुछ अंशों का अनुवाद किया। इन सुव्यवस्थित प्रयासों एवं इससे सम्बद्ध ऐतिहासिक दृष्टि का प्रभाव भारत में 19वीं सदी में आरम्भ हुए हिंदी, बंगाली, मराठी भाषाई क्षेत्रों के नवजागरण एवं उनसे जुड़े सुधारवादी आन्दोलनों पर हुआ। जिसके परिणामस्वरूप भारत में जिस नवचेतना का उदय हुआ उसके आधार पर ही नवोदित राष्ट्रवाद की भावना का विकास हुआ जिसका रूपान्तरण प्रखर स्वतंत्रता आंदोलन के रूप में हुआ और अंततः भारत उपरिवेशवादी शक्तियों के चंगुल से स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हो सका।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि प्राच्यवाद की अवधारणा का विकास पश्चिम के उपनिवेशवादियों ने अपने सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक लाभ के लिए किया था। जिसका उद्देश्य स्वदेशी संस्कृति की तुलना में पश्चिमी संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए अपना उल्लू सीधा करना था। इसके बावजूद भारत सहित पूर्वी देशों की जनता ने इसका उपयोग स्थानीय पुर्नजागरण में किया जो कि अंततः उनकी स्वतंत्रता में भी सहायक सिद्ध हुआ।

Scanned with CamScanner